१७६ गाथा का कलश २९३। टीका करते हुए मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं-

षट्कापक्रमयुक्तानां भविनां लक्षणात् पृथक्।
सिद्धानां लक्षणं यस्मादूर्ध्वगास्ते सदा शिवाः ।।२९३।।

संसारी जीव कैसे हैं? कि **जो छह अपक्रम सहित हैं...** मरकर छह दिशाओं में गमन करनेवाले हैं। समझ में आया? संसारी जीव का देह छूटे तो वह छह दिशा—ऊर्ध्व, अधो, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण - छह दिशाओं में उसका गमन होता है। **ऐसे भववाले जीवों के... 'भविनां'** भवि शब्द है न अन्दर? भवि का अर्थ भव। आया है न? पहले समयसार में आ गया है। **ऐसे भववाले जीवों के (-संसारियों के) लक्षण से सिद्धों का लक्षण भिन्न है,...** संसारी जीव देह छूटे, तब छह दिशाओं में जाते हैं। छह में से किसी एक में (जाते हैं)। उससे सिद्ध का लक्षण भिन्न है। **इसलिए वे सिद्ध ऊर्ध्वगामी हैं...** वे तो ऊर्ध्वगामी हैं। देह छूटे तो सिद्ध भगवान ऊर्ध्वगामी होते हैं। एक समय में ऊपर जाते हैं। **सदा शिव (निरन्तर सुखी) हैं।** निरन्तर आनन्द के सुख के अनुभव में स्थित हैं। सदाशिव है न? सदा, निरन्तर वे सुखी हैं। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। आनन्द का अनुभव निरन्तर (वर्तता है)। उन्हें सिद्ध कहा जाता है।

श्लोक-२९४

(मंदाक्रांता)

बन्धच्छेदा-दतुल-महिमा देव-विद्याधराणां,
प्रत्यक्षोऽद्य स्तवनविषयो नैव सिद्धः प्रसिद्धः।
लोकस्याग्रे व्यवहरणतः सन्स्थितो देव-देवः,
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया निश्चयेनैव-मास्ते ।।२९४।।

(वीरछन्द)

नाश किया है भव बन्धन का अतः अतुल वे महिमावान।
सुरगण के प्रत्यक्ष स्तवन का विषय नहीं वे सिद्ध महान॥
'लोक अग्र में सुस्थित वे देवाधिदेव' व्यवहार कथन।
'निज में अविचल स्थिर रहते' यह जानो परमार्थ वचन॥२९४॥

[श्लोकार्थः—] बन्ध का छेदन होने से जिनकी अतुल महिमा है, ऐसे (अशरीरी और लोकाग्रस्थित) सिद्ध भगवान अब देवों और विद्याधरों के प्रत्यक्ष स्तवन का विषय नहीं ही हैं, ऐसा प्रसिद्ध है। वे देवाधिदेव व्यवहार से लोक के अग्र में सुस्थित हैं और निश्चय से निज आत्मा में ज्यों के त्यों अत्यन्त अविचलरूप से रहते हैं।२९४।

श्लोक - २९४ पर प्रवचन

बन्धच्छेदा-दतुल-महिमा देव-विद्याधराणां,
प्रत्यक्षोऽद्य स्तवनविषयो नैव सिद्धः प्रसिद्धः।
लोकस्याग्रे व्यवहरणतः सन्स्थितो देव-देवः,
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया निश्चयेनैव-मास्ते ।।२९४।।

सिद्ध भगवान लोकाग्र में रहे हैं। उन्हें **बन्ध का छेदन होने से जिनकी अतुल महिमा है...** अशरीरी परमात्मा सिद्ध हुए, उन्हें बन्ध का छेद है, आठों कर्म का अभाव है, इसलिए जिनकी अतुल महिमा है। उनकी क्या महिमा कहना? उनकी अतुल—किसी के साथ तुलना नहीं हो सकती। अकेला स्वभाव चैतन्यरस और आनन्द था, वह पर्याय में प्रगट हुआ। पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य, पूर्ण स्वरूप सब। अतुल महिमा है। जो संसारी को साध्यरूप से सिद्ध है, वे ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं। अपने को भी सिद्ध साध्य है न?

जिनकी अतुल महिमा है... कुछ तुलना नहीं। ऐसा तो जिनका ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त शक्तियों की व्यक्तता अनन्त महिमासहित प्रगट हुई है। **ऐसे (अशरीरी और लोकाग्रस्थित)...** हैं। सिद्ध भगवान अब ऊपर हैं, इसलिए सिद्ध भगवान अब, अरिहन्त

थे, तब तक तो प्रत्यक्ष वन्दन के योग्य थे, अब प्रत्यक्ष स्तवन के योग्य नहीं रहे। समवसरण में थे, तब तक तो ऐसे भगवान विराजते थे; इसलिए प्रत्यक्ष स्तवन आदि था।

सिद्ध भगवान अब देवों और विद्याधरों के प्रत्यक्ष स्तवन का विषय नहीं ही हैं, ऐसा प्रसिद्ध है। परन्तु वे तो ऊपर लोकाग्र में हुए। मानो कि देवों को, विद्याधर को वन्दन को प्रत्यक्षयोग्य रहे नहीं, परोक्ष हैं। **वे देवाधिदेव...** देखो! उन सिद्ध को देवाधिदेव कहा। **व्यवहार से लोक के अग्र में सुस्थित हैं...** लोक के अग्र में हैं, वह परक्षेत्र है, इसलिए उन्हें व्यवहार से वहाँ है, ऐसा कहने में आता है। **और निश्चय से निज आत्मा में...** अपना आनन्द और ज्ञानादि स्वभाव है, उसमें स्थित हैं। स्वयं अपने क्षेत्र में, अपने भाव में स्थित हैं। परक्षेत्र में हैं, ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा!

निश्चय से... तो वे सिद्ध भगवान **निज आत्मा में...** अपने आत्मा में **ज्यों के त्यों अत्यन्त अविचलरूप से रहते हैं।** चलित हुए बिना, अस्थिर हुए बिना ऐसा उनका स्वरूप, उस अनुसार रहता है। अपने स्वरूप में अविचलरूप से रहते हैं। ऐसे उन्हें सिद्ध भगवान कहते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे सिद्ध होते हैं।

श्लोक-२९५

(अनुष्टुप्)

पञ्च-सन्सार-निर्मुक्तान् पञ्च-सन्सार-मुक्तये।
पञ्चसिद्धानहं वन्दे पञ्चमोक्षफलप्रदान्।।२९५।।

(वीरछन्द)

पञ्च परावर्तन से विरहित हैं, पञ्च मोक्षफल दायक है।
पञ्च संसरण मुक्ति हेतु हम पञ्च सिद्ध को नमन करें॥२९५॥

[श्लोकार्थः—](द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव—ऐसे पाँच परावर्तनरूप) पाँच प्रकार के संसार से मुक्त, पाँच प्रकार के मोक्षरूपी फल को देनेवाले (अर्थात् द्रव्यपरावर्तन, क्षेत्रपरावर्तन, कालपरावर्तन, भवपरावर्तन और भावपरावर्तन से मुक्त

करनेवाले), पाँच प्रकार सिद्धों को (अर्थात् पाँच प्रकार की मुक्ति को—सिद्धि को—प्राप्त सिद्धभगवन्तों को) मैं पाँच प्रकार के संसार से मुक्त होने के लिए वन्दन करता हूँ।२९५।

श्लोक -२९५ पर प्रवचन

(कलश) २९५

पञ्च-सन्सार-निर्मुक्तान् पञ्च-सन्सार-मुक्तये।
पञ्चसिद्धानहं वन्दे पञ्चमोक्षफलप्रदान्।।२९५।।

श्लोकार्थ : (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव—ऐसे पाँच परावर्तनरूप)... जगत के पदार्थों के एक परमाणु से लेकर अनन्त, उनके सम्बन्ध में अनन्त बार आना, ऐसा परावर्तन। इसी प्रकार क्षेत्र में, काल में, भव और भाव ऐसे पाँच परावर्तनरूप **पाँच प्रकार के संसार से मुक्त,...** हैं। भगवान सिद्ध तो ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव—ऐसे पाँच परावर्तनरूप संसार से मुक्त हैं। **पाँच प्रकार के मोक्षरूपी फल को देनेवाले...** हैं। पाँच प्रकार के मोक्षरूपी फल को **(अर्थात् द्रव्यपरावर्तन, क्षेत्रपरावर्तन, कालपरावर्तन, भवपरावर्तन और भावपरावर्तन से मुक्त करनेवाले),...** हैं। वे मुक्त करनेवाले हैं। मुक्त करनेवाले। मुक्त हैं या मुक्त करनेवाले पर को ? '**पंचसंसारमुक्तये**' ऐसा है। अन्त में पंच मोक्षफल प्रदान हैं। पंच मोक्षफल प्रदान। स्वयं प्राप्त हुए हैं और निमित्तरूप से पंच प्रकार के संसार से रहित होने में मुक्त करनेवाले हैं। लो! सिद्ध भगवान मुक्त करनेवाले हैं। यह सब निमित्त की वाणी है। जो कोई सिद्धस्वरूप को अपने समान जानता है, उनके जैसा अपने को जानता है, उसे पंच परावर्तन का नाश होकर मुक्ति होती है, इसलिए सिद्ध देनेवाले हैं, ऐसा कहने में आता है। व्यवहार की कथनी ऐसी होती है। दूसरा क्या हो ?

पाँच प्रकार सिद्धों को... लो! यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरहित हुए, ऐसे पाँच प्रकार के सिद्ध **(अर्थात् पाँच प्रकार की मुक्ति को—सिद्धि को—प्राप्त सिद्धभगवन्तों को) मैं...** मुनि कहते हैं कि सब **पाँच प्रकार के संसार से मुक्त होने के लिए वन्दन करता हूँ।** पाँच प्रकार के संसार से मुक्त होने के लिये वन्दन करता हूँ। सिद्ध को वन्दन करता

हूँ, यह तो विकल्प है। परन्तु मेरा आशय अन्दर दूसरा है। मैं तो मुक्त होने के लिये मेरा विकल्प रहा, परन्तु वन्दन का आदर तो मेरे स्वभाव की ओर का है। समझ में आया?

ऐसे पाँच प्रकार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव से मुक्त होने के लिये वन्दन करता हूँ। उसमें कोई स्वर्ग चाहिए है, ऐसा नहीं है। व्यवहार के कथन तो ऐसे ही होते हैं। लो! भगवान को वन्दन करता हूँ, वह भगवान होने के लिये वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। उसमें और पुण्य होगा तथा स्वर्ग मिले, इसलिए नहीं। समझ में आया? 'तद् (गुण) लब्धे' आता है न? 'तद्गुणलब्धे' उसमें से वे लोग निकालते हैं। यह सवाल आया है वहाँ।

मुमुक्षु : यह दलील है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दलील है। वह दलील यह रही। इस पाठ में रही। 'तद्गुणलब्धे' हे प्रभु परमात्मा! आपके गुण की प्राप्ति के लिये आपको वन्दन करता हूँ। वहाँ परद्रव्य को वन्दन करने का विकल्प हो तो उससे गुण की प्राप्ति कैसे होगी? 'तद्गुणलब्धे'। तुम्हारे गुण की लब्धि के लिये मैं वन्दन करता हूँ।

मुमुक्षु : परन्तु तद्गुण की लब्धि के लिये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्राप्ति के लिये।

मुमुक्षु : कहाँ से होती होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को वन्दन करे, उसमें से। यह प्रश्न पण्डितों को हुआ था। उस ओर से प्रश्न आया था। देखो! इसमें ऐसा है। दलील करे, क्या काम आवे वहाँ। वह तो व्यवहार से बात है। यह तो ऐसा ही कहे न प्रभु! आपसे मुझे प्राप्त हुआ, ऐसा ही कहे। ऐसा कहे कि मुझे मुझसे हुआ है? उसकी भाषा कैसी होगी? समझ में आया? आप न होते तब तो मैं भटक मरता। आपके कारण तो मेरे संसार का अन्त आने का अवसर आया। ऐसी ही भाषा बोले न? विनय की शैली (ऐसी होती है) परन्तु उनके कारण से है या आत्मा के कारण? समझ में आया?

पाँच प्रकार के संसार से मुक्त होने के लिए वन्दन करता हूँ। मेरा आदर गुण का है। उस गुण के आदर में मुझे गुण की पूर्ण प्राप्ति दशा हो, पाँच प्रकार के संसार से मुक्त होऊँ। भाषा तो ऐसी ही होगी!

गाथा-१७७

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं ।।१७७।।

जातिजरामरणरहितं परमं कर्माष्टवर्जितं शुद्धम्।
ज्ञानादि-चतुःस्वभावं अक्षय-मविनाश-मच्छेद्यम् ।।१७७।।

कारणपरमतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। निसर्गतः सन्सृतेरभावाज्जातिजरामरणरहितं, परम-पारिणामिकभावेन परमस्वभावत्वात्परं, त्रिकालनिरुपाधिस्वरूपत्वात् कर्माष्टकवर्जितं, द्रव्यभावकर्मरहितत्वाच्छुद्धं, सहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजचिच्छक्तिमयत्वाज्ज्ञानादि-चतुःस्वभावं, सादिसनिधनमूर्तेन्द्रियात्मकविजातीयविभावव्यञ्जनपर्यायवीतत्वादक्षयम्, प्रशस्ताप्रशस्तगतिहेतुभूतपुण्यपापकर्मद्वन्द्वाभावादविनाशं, वधबन्धच्छेदयोग्यमूर्तिमुक्त-त्वादच्छेद्यमिति।

विन कर्म, परम, विशुद्ध जन्म, जरा, मरण से हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय अक्षय अछेद, अछीन है॥१७७॥

अन्वयार्थ : [जातिजरामरणरहितम्] (परमात्मतत्त्व) जन्म-जरा-मरण रहित, [परमम्] परम, [कर्माष्टवर्जितम्] आठ कर्म रहित, [शुद्धम्] शुद्, [ज्ञानादिचतुः स्वभावम्] ज्ञानादिक चार स्वभाववाला, [अक्षयम्] अक्षय, [अविनाशम्] अविनाशी और [अच्छेद्यम्] अच्छेद्य है।

टीका : (जिसका सम्पूर्ण आश्रय करने से सिद्ध हुआ जाता है, ऐसे) कारण -परमतत्त्व के स्वरूप का यह कथन है।

(कारणपरमतत्त्व ऐसा है:—) निसर्ग से (स्वभाव से) संसार का अभाव होने

के कारण जन्म-जरा-मरण रहित है; परम-पारिणामिकभाव द्वारा परमस्वभाववाला होने के कारण परम है; तीनों काल निरुपाधि-स्वरूपवाला होने के कारण आठ कर्म रहित है; द्रव्यकर्म और भावकर्म रहित होने के कारण शुद्ध है; सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र और सहजचित्शक्तिमय होने के कारण ज्ञानादिक चार स्वभाववाला है; सादि-सान्त, मूर्त इन्द्रियात्मक विजातीय-विभावव्यंजनपर्याय रहित होने के कारण अक्षय है; प्रशस्त-अप्रशस्त गति के हेतुभूत पुण्य-पापकर्मरूप द्वन्द्व का अभाव होने के कारण अविनाशी है; वध, बन्ध और छेदन के योग्य मूर्ति से (मूर्तिकता से) रहित होने के कारण अच्छेद्य है।

गाथा - १७७ पर प्रवचन

गाथा, १७७

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं ।।१७७।।

विन कर्म, परम, विशुद्ध जन्म, जरा, मरण से हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय अक्षय अछेद, अछीन है॥१७७॥

यह कारणपरमात्मा की व्याख्या है। पहले गयी वह सिद्ध की—कार्यपरमात्मा की व्याख्या (थी)। समझ में आया? **(जिसका सम्पूर्ण आश्रय करने से सिद्ध हुआ जाता है ऐसे) (कारणपरमात्मा) कारणपरमतत्त्व...** त्रिकाली ज्ञायकभाव, द्रव्यस्वभाव कारणपरमात्मा, ध्रुव कारणजीव के **स्वरूप का यह कथन है।** सम्पूर्ण आश्रय करने से। अपना भगवान, उसका सम्पूर्ण आश्रय करने से। अल्प आश्रय करने से सम्यक् होता है, विशेष आश्रय करे तो वह चारित्र होता है, सम्पूर्ण आश्रय करने से सिद्ध होता है। समझ में आया, लो! इसमें तो वापस कुछ नहीं आया। फिर डाला, पर का आश्रय करने से होता है, ऐसा कुछ नहीं आया।

मुमुक्षु : अगली गाथा में आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अगली गाथा में आया किस प्रकार? इससे विरुद्ध आया? निमित्त

के कथन हैं। व्यवहार में विवेक से ऐसा ही बोला जाता है न? वह कहता था, नहीं? जूनागढ़। हमारे तो यह भगवान की भक्ति वीतरागता के लिये करते हैं। हमें कुछ राग-बाग नहीं चाहिए। परन्तु यह भगवान की भक्ति स्वयं ही राग है। भगवान त्रिलोकनाथ की भक्ति करना, वह तो शुभराग पुण्य है; वह कहीं धर्म नहीं है। निश्चयस्वभाव का भान और अनुभव हो तो उस पुण्य को व्यवहारधर्म कहने में आता है। धर्म का वह स्वरूप नहीं है। वे कहते थे। (संवत्) १९९५ में बहुत चर्चा चली, १९९५। श्वेताम्बर में वहाँ के प्रमुख। गिरनार, जूनागढ़, नेमिचन्दभाई है। दीपचन्दभाई के भाई। बहुत चर्चा (चली)। हमें तो यह भगवान की भक्ति मुक्ति के लिये चाहिए। मुझे कुछ राग-बाग नहीं चाहिए। परन्तु भगवान की भक्ति स्वयं ही राग है। राग में से मुक्ति कहाँ से मिलती थी? कठिन काम है। समझ में आया?

परद्रव्य की भक्ति में वीतरागता हो ही नहीं सकती। स्वद्रव्य का आश्रय-भक्ति करे तो उसे वीतरागता होती है। लोगों को तत्त्व की खबर नहीं होती, इसलिए बेचारे यहाँ से भगवान की मुक्ति इसमें भगवान में से हो जाएगी। भगवान हमें मुक्ति देंगे। हम तो उनके दर्शन करते हैं। (यह बात) एकदम मिथ्याश्रद्धा है। समझ में आया? यहाँ आत्मा जो अन्दर है अखण्डानन्द प्रभु, पूर्ण ज्ञायकभाव, कारणतत्त्व, उसका आश्रय करने से मुक्ति होती है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, सम्पूर्ण आश्रय करने से मुक्ति होती है। कहो, समझ में आया?

(जिसका सम्पूर्ण आश्रय करने से...) उसमें स्पष्ट टीका है। कारणपरमात्मा की टीका भी है। **(सिद्ध हुआ जाता है...)** टीका में ही स्पष्ट बात है। कारणप्रभु की बात है। **कारणपरमतत्त्व के स्वरूप का यह कथन है। कारणपरमतत्त्व...** यह आत्मा कारणरूप जो मोक्ष के कार्य का कारण। सम्यग्दर्शन चारित्ररूपी कार्य का कारण, ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा जाता है। आहाहा! इसमें ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण भरे हैं, ऐसा जो भगवान कारणपरमात्मा अपना स्वरूप, उसका आश्रय करने से जघन्य दशा से लेकर सिद्धदशा उत्पन्न होती है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का आश्रय करने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य का आश्रय करने जाए तो राग होता है। समझ में आया? होवे अवश्य राग, परन्तु वह मुक्ति का कारण है, ऐसा नहीं है। गजब बात!

कारणपरमात्मा आनन्द से भरपूर है, स्वभाव से भरपूर पदार्थ अपना निज आत्मा।

निसर्ग से (स्वभाव से) संसार का अभाव होने के कारण... ऐसे कारणपरमात्मा में स्वभाव से ही संसार का अभाव है। उसमें संसार है नहीं। कारणपरमात्मा अपना द्रव्यस्वभाव अनादि-अनन्त अविनाशी तत्त्व आत्मा, कारण। वह स्वभाव **निसर्ग से (स्वभाव से) संसार का अभाव...** है। इसका सहजस्वभाव ही ऐसा है कि उसमें संसार नहीं है। **जन्म-जरा-मरण रहित है;...** भगवान आत्मा कारणप्रभु, अविनाशी कारणआत्मा, वह जन्म-जरा-मरणरहित है। उसे जन्मना नहीं, मरना नहीं और जरा भी नहीं।

परम-पारिणामिकभाव द्वारा... लो! आया। वह तो परमपारिणामिकभाववाला भगवान कारणपरमात्मा है। इसमें तो उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव भी नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? **परम-पारिणामिकभाव द्वारा...** अन्तर के सहज अविनाशी स्वभाव के भाव द्वारा **परमस्वभाववाला होने के कारण परम है;...** ऐसे स्वभाव द्वारा परमस्वभाव, वह तो परमस्वभाव है। केवलज्ञान और केवलदर्शन की पर्याय से भी यह तो परमस्वभाव भिन्न है। समझ में आया?

परमस्वभाववाला होने के कारण... क्या कहा? **परम-पारिणामिकभाव द्वारा परमस्वभाववाला होने के कारण...** ऐसा। परमपारिणामिक सहजस्वभावभाव अविनाशी, ऐसे भाव द्वारा परमस्वभाववाला वह कारणपरमात्मा होने से वह परम है। आहाहा! कहो, समझ में आया? इस सिद्ध की दशा से भी वह परम भिन्न है। सिद्ध की दशा तो एक समय का अंश है, वह तो क्षायिकभाव से है। यह तो परमस्वभावभाववाला परम तत्त्व है। त्रिकाल है। जिसमें ऐसी अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सिद्ध की पर्याय के समूहरूप गुण से भरपूर है। सहज पारिणामिकस्वभाव। कहो, समझ में आया? ऐसा परम तत्त्व है, उसका आश्रय करे तो धर्म होता है। बाकी तीन काल में दूसरे प्रकार से धर्म नहीं होगा। अरे!

अपने परमात्मा का स्वभाव परिपूर्ण है और वही परम तत्त्व है। परमपारिणामिक स्वभावभाव के कारण परमस्वभाववाला होने से परम है। परमस्वभाववाला होने से परम है। सिद्ध की पर्याय भी परमस्वभाववाला नहीं है। आहाहा! ऐसा अन्दर कारणपरमात्मा परमपारिणामिकस्वभाववाला होने से परम है, उसे अन्तर्दृष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन होता है। उसका पूर्ण आश्रय करने से सिद्ध होता है। कहो, समझ में आया? स्वयं महान है, उसके बदले वह कहाँ है और कैसे है, उसकी इसे खबर नहीं है। समझ में आया? स्वयं महान परमस्वभाव, सहजभाव, सहजस्वभाव, वस्तु का स्वभाव, सहज परमभाव (रहा

है)। स्वभाव से परमतत्त्व है, उसकी उसे महिमा की तो खबर नहीं और यह बाहर की सब बातें! दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, यह सब विकल्प जो कि उसमें नहीं है और उसके आश्रय बिना ये चलते नहीं। टालने के लिए भी उसका आश्रय हो तो टलें। समझ में आया? ऐसा परमतत्त्व परम सत् का सत्त्व परमपारिणामिकभाव को यहाँ परम—दूसरे तत्त्वों की अपेक्षा परम कहने में आता है। आहाहा!

तीनों काल निरुपाधि-स्वरूपवाला होने के कारण आठ कर्म रहित है;... भगवान आत्मा कारण वस्तु, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, तीनों काल कर्मरहित है वह तो। पर्याय में कर्म के निमित्त का सम्बन्ध है। वस्तु में तो है नहीं। आहाहा! **तीनों काल निरुपाधि-स्वरूपवाला...** उपाधिरहित स्वरूप है। वह तो भगवान सत्त्व अकेला, ज्ञान का भाव, आनन्द का भाव, शान्ति, वीतरागस्वभाव का भाव, ऐसा त्रिकाली परमस्वभाव निरुपाधि है। उसके **कारण आठ कर्म रहित है;...** वह कारणपरमात्मा आठ कर्मरहित है। लो! यह कारणपरमात्मा की व्याख्या चलती है। क्या आया था? प्रश्न आया था न रात्रि में? कारणपरमात्मा, कारणपर्याय, कार्यपरमात्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहा न?

मुमुक्षु : कारणपर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? कारणपर्याय कही न? यही कहा। यही शब्द है। कारणपरमात्मा, कारणपर्याय और कार्यपरमात्मा, ऐसे तीन बोल इसमें आये। यह कारणपरमात्मा की व्याख्या चलती है। उसकी पर्याय में उत्पाद-व्यय बिना की जो शुद्ध कारणपर्याय है, वह तो ध्रुव है। समझ में आया? कारण प्रभु त्रिकाल निरुपाधि—उपाधिरहित और उसकी कारणपर्याय भी त्रिकाल उपाधिरहित। समझ में आया? और वह कारण स्वयं द्रव्यस्वभाव और कारणपर्याय दोनों उत्पाद-व्ययरहित। अरेरे! ऐसा वह भगवान! ऐसा आत्मा कुछ सुना नहीं। यह तो आत्मा एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया। चिमनलालभाई! अभिहया, वतिया, लेसिया, मिच्छामि दुक्कडम, जाओ। जीवियाओ, ववरोविया आहाहा! परन्तु यह जीवियाओ ववरोविया ऐसा आत्मा त्रिकाल है, उसे तू मानता नहीं और जीवियाओ ववरोविया तूने कर डाला है तेरा। क्यों धनजीभाई!

ऐसा कारणप्रभु त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु मुक्तस्वरूप ध्रुव सत्त्व आत्मा का तो स्वीकार नहीं। स्वीकार नहीं अर्थात् एक पर्याय का और राग का स्वीकार है। इसका रीतसर निषेध किया है। कि तू ऐसा है ? नहीं। नहीं, नहीं। मैं तो ऐसा हूँ - रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, और एक समय की पर्यायवाला हूँ तो ऐसा जो उसका जीवत्व-जीवन, जीवितेश। लो, आया था न जीवितेश ? आहाहा! इसके टिकने का ईश्वर स्वयं त्रिकाल टिकता तत्त्व है। अरूपी परन्तु वस्तु है न ? और वह वस्तु है, वह अनन्त-अनन्त बेहद सहज परमस्वभावभाववाला तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया ? पहले सिद्ध की व्याख्या आ गयी। अब सिद्ध की आयेगी। २७८ से। यह एक बीच में कारणपरमात्मा की बात पहले बीच में डाली है। आहाहा!

द्रव्यकर्म और भावकर्म रहित होने के कारण... भगवान कारणप्रभु, ध्रुव सत्त्व ज्ञायकभाव। परमपारिणामिक अर्थात् सहजभावस्वरूप, उसे द्रव्यकर्म और भावकर्म नहीं है। उसमें अकेले आठ जड़कर्म डाले थे। इसमें दो डाले हैं। **द्रव्यकर्म और भावकर्म रहित होने के कारण शुद्ध है;...** है न ? '**कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।**' भगवान आत्मा त्रिकाली उसका स्वरूप, वह तो आठ कर्म और भावकर्मरहित शुद्ध है। अत्यन्त शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... अनादि का शुद्ध। समझ में आया ?

सहजज्ञान,... अब स्पष्टीकरण किया। वह पारिणामिकभाव समुच्चय कहा था न ? पारिणामिकभाव द्वारा परमस्वभाववाला। तो अब कैसा उसका स्वभाव है ? **सहजज्ञान,...** वस्तु का स्वभाव स्वाभाविक ज्ञान त्रिकाल, ऐसे ज्ञानस्वभाववाला, वह परमतत्त्व है। स्वाभाविक ज्ञान। केवलज्ञान की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया ? केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है। यह तो त्रिकाली सहज ज्ञान। गुण-गुण।

अरे! ऐसा भगवान, उसका इसे माहात्म्य नहीं आया और इस सब दुनिया का माहात्म्य। लड़का अच्छा निकले तो प्रसन्न, विवाह अच्छा होवे तो प्रसन्न, पैसा कुछ पाँच-पच्चीस लाख मिले तो प्रसन्न। धूल... धूल... धूल...। यह परमात्मा ऐसा है। उसकी तो इसे खबर नहीं। आहाहा! ऐई! बाबूभाई! पैसा कुछ पाँच-पच्चीस लाख मिले और लड़का अच्छा अर्थात्... धूल भी नहीं, मर गया, सुन न! जीवन्तज्योति का तो तू अनादर करता है। आहाहा! ऐसा परमात्मा तू स्वयं, अविनाशी शक्ति के सत्त्वरूप, रसरूप, भावरूप, स्वभावभावरूप, उसकी तो तुझे श्रद्धा नहीं, उसका तुझे आश्रय नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह भी विकल्प राग है। वह कहीं समकित नहीं है। सम्यक्त्व तो त्रिकाली परमस्वभावभाव की अन्तर रुचि करना, अनुभव निर्विकल्प (होना), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? सम्प्रदाय में तो कहीं हाथ आवे, ऐसा नहीं है। चिमनलालभाई! अब थोड़ा करते जाते हैं। आहाहा! बड़ा वर— भगवान वर को छोड़कर बारात जोड़ दी है। कौन है वह त्रिकाली? एक समय की पर्याय भी नहीं। सिद्ध की पर्याय से रहित वह है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु है न? वस्तु है तो उसका - वस्तु का जितना त्रिकाल भाव, ऐसा ही उसका स्वभावभाव है। वह स्वभावभाववाला तत्त्व है, उसे यहाँ कारणपरमात्मा अथवा कारणतत्त्व कहा है। उसमें कुछ... आहाहा! कैसी चीज़ का विश्वास! ऐसा है, उसका विश्वास (आया वहाँ) अन्यत्र सबसे विश्वास उड़ गया। पर्याय और राग का विश्वास उड़ गया। ऐसा मैं हूँ, ऐसा जो विश्वास (आवे), उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वाभाविक ज्ञान। स्वभाव से ही निसर्ग संसार का अभाव है। परन्तु अब भाव क्या? समझ में आया? कि सहजज्ञान। त्रिकाली परमस्वभावभावरूप सहजज्ञान। **सहजदर्शन, सहजचारित्र...** स्वाभाविक दर्शन, त्रिकाली दर्शन। त्रिकाली सहजदर्शनरूप स्वभावभाव, वह कारणपरमात्मा। ऐसे चार स्वभाववाला है, ऐसा कहना है। **सहजचारित्र...** यह चारित्र वीतरागीदशा प्रगट हो, वह यह नहीं है। त्रिकाली सहजचारित्र (सहज) वीतरागभाव। आत्मा में कारणपरमात्मा में स्वभाव, स्वाभाविक चारित्र अर्थात् स्वाभाविक वीतरागता। स्वाभाविक वीतरागता यह उसका रूप-स्वरूप है। आहाहा!

और सहजचित्शक्तिमय... ज्ञान की शक्ति का वीर्य। स्वाभाविक चित्शक्तिमय **होने के कारण...** उसकी तो स्वाभाविक ज्ञान के सामर्थ्यरूप शक्ति है। आहाहा! उसकी शक्ति-स्वभाव चित्शक्तिरूप शक्ति है। त्रिकाल-त्रिकाल उसकी शक्ति है। ऐसा **होने के कारण...** इस कारण से **ज्ञानादिक चार स्वभाववाला (तत्त्व) है;...** कारणपरमात्मा ध्रुव भाववाला तत्त्व ऐसे स्वभाववाला है। आहाहा! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय भी जहाँ अतुल और अमाप है, तो यह तो त्रिकाली स्वभाविक गुण है। उसकी शक्ति, उसका सामर्थ्य, उसका बल और उसका सत्त्व अपार... अपार... अपार... ऐसे अपार सत्त्ववाला, वह तत्त्व है। लो! आत्मा यह। वे कहते हैं न कि जीव किसे कहना? हिले-चले, उसे जीव कहना। है? जीव विचार आता है न, जीव विचार? जीव विचार आता है। वह किसे

कहना? हिले-चले उसे जीव कहना। एक जगह से दूसरी जगह जाए (वह जीव)। परमाणु हिलते-चलते हैं, एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं।

मुमुक्षु : ऐयरोप्लेन जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐयरोप्लेन अपने आप जाता है।

यह तो भगवान आत्मा जीव उसे कहना कि स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन और आनन्द और वीर्य से भरपूर पदार्थ, उसे यहाँ आत्मा कहना है। किसी का कर दे और किसी को मदद करे और किसी की मदद ले, वह आत्मा नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई!

यह चार स्वभाववाला (कहा उनमें) अनन्त चतुष्टय लिये हैं। त्रिकाल। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। ऐसे अनन्त चतुष्टय के स्वभाववाला, त्रिकाल कारणपरमात्मा जिसकी खान में ऐसा अनन्त भरा है। आहाहा! उसका आश्रय लेने से धर्म होता है। समझ में आया? काल-दुष्काल सेठिया तो कहे न? कि भाई! यह जो काल ऐसा है, आपके सहारे हमको यह निभना है। निभाना। काल में दुष्काल है इसलिए।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि इस संसार के भाव से निभाना। कौन? यह आत्मा। आहाहा! संसार की आपदा चार गति की, उससे अभाव करने का स्वभाव है, उस आपदा को मिटाने का स्वभाव तो आत्मा है। तू महालक्ष्मीवन्त है, प्रभु! इस सुकाल-दुष्काल में मेरा सहज करना। ऐसा कहते हैं न? सेठिया तो कहते हैं। पोपटभाई! मदद करूँगा अनाज की। यह तो तीन काल-तीन लोक में जो पराधीनता है, वह सब मिटाने में समर्थ वह भगवान आत्मा अकेला है। समझ में आया? अब यह क्या परन्तु ऐसा?

कारणपरमात्मा का तो सम्प्रदाय में नाम भी नहीं सुना होगा। आहाहा! नियमसार में तो दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है! केवलज्ञान का पेट (रहस्य) खोला है। आहाहा! वीतराग का धर्म, जैनदर्शन कहो या विश्वदर्शन कहो या विश्व का स्वरूप (कहो), इसे सन्तों ने-दिगम्बर सन्तों ने धार रखा है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसी बात कहीं है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! तू कौन है? ऐसा है। यह बात अन्यत्र कहाँ है? समझ में आया? ऐसा है... रहित अक्षय कहते हैं।

यह **सादि-सान्त,...** यह शरीर है न? मिलता है, शुरुआत (होती है) पश्चात् अन्त

आ जाता है। **मूर्त इन्द्रियात्मक विजातीय-विभावव्यंजनपर्याय रहित...** विभाव-व्यंजनपर्यायरहित **होने के कारण अक्षय है;...** इस शरीररहित होना है, ऐसा है नहीं। वह अक्षय ही है। आहाहा! इसमें विभावव्यंजनपर्याय शरीर की या उसकी आकृति वह भी उसमें नहीं है। **प्रशस्त-अप्रशस्त गति के हेतुभूत पुण्य-पापकर्मरूप द्वन्द्व का अभाव होने के कारण...** लो! ये सब शब्द इनके हैं न? '**अक्खयमविणासमच्छेयं**' कैसा है भगवान आत्मा—त्रिकाली इसका ध्रुवतत्त्व परम भाववाला? कि जो प्रशस्त-अप्रशस्त गति। देव और मनुष्य प्रशस्त कहलाते हैं, नारकी और (तिर्यंच) वह अप्रशस्त। ऐसी **गति के हेतुभूत पुण्य-पापकर्मरूप...** यह पुण्य और पाप, उसके द्वन्द्व का अभाव है। इस पुण्य-पाप के द्वन्द्वरहित तत्त्व अन्दर है। समझ में आया? उसके कारण **अविनाशी है;...**

वध, बन्ध और छेदन के योग्य मूर्ति से (मूर्तिकता से) रहित होने के कारण... आहाहा! अच्छेद है न? **वध, बन्ध और छेदन के योग्य...** उसमें वध भी नहीं, बन्ध भी नहीं और छेदने योग्य मूर्ति से रहित **(मूर्तिकता से) रहित होने के कारण अच्छेद्य है।** अच्छेद और अभेद, ऐसे शब्द तो गीता में भी आते हैं। परन्तु ऐसा तत्त्व हो, उसे अच्छेद और अभेद कहते हैं। समझ में आया? अच्छेद आता है न उसमें? छिदता नहीं, विंधता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान कारणपरमात्मा त्रिकाली ध्रुव परमस्वभाव को वध नहीं है, वध नहीं और बन्ध नहीं और छेद नहीं। ऐसी की ऐसी अच्छेद वस्तु है। कहो, समझ में आया? हीरा के स्तम्भ भी छिद जाते हैं। देखो न! तलवार रखे स्वयं सरीखी। कैसे? चक्रवर्ती। एक-एक तलवार हजार देव। ऐसे ककड़ी काटे वैसे हीरा के स्तम्भ काट डालते हैं एकदम। हीरा के स्तम्भ, हों! उस स्तम्भ की है न जाति वहाँ? मूड़बिद्री? मुड़बिद्री... है न पहले का। मकान सब पुराने जीर्ण हैं। उनके स्तम्भ ऐसे बड़े मजबूत हैं। पहले के राजकुटुम्ब कहलाते हैं। है, उनके घर गये थे। स्तम्भ। यह तो हीरे के स्तम्भ। तलवार हाथ में होवे तो ऐसा करे। ककड़ी करे, वैसे चीर डाले। परन्तु यह आत्मा कटता नहीं है। आहाहा! छिदता नहीं है, ऐसा यह आत्मा है।

आत्मा त्रिकाली ध्रुव आत्मा की बात है। एक समय की पर्याय का पलटना, वह भिन्न चीज़ है। उसके अतिरिक्त यह त्रिकाली चीज़ ऐसा आत्मा है, उसका यह वर्णन है। समझ में आया?

[अब, इस १७७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

ऐसा सर्वज्ञ ने देखा। ऐसा देखा भगवान ने। इस आत्मा को परमात्मा ने ऐसा देखा। ऐसा जो देखे और माने, वह परमात्मा को माननेवाला कहने में आता है। कहो, समझ में आया? उसे वह परमात्मा, अल्प काल में यह पर्याय चली जाएगी। जिसने परमात्मा का आश्रय लिया, वह परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। इसमें भी करना क्या? कुछ करना? यह दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, यह तो कुछ इसमें आया नहीं। यह तो सब विकल्प है। उसकी यहाँ बात भी कहाँ है? वह विकल्प तो उसकी निर्मल पर्याय में ही नहीं है तो द्रव्य में तो (कहाँ से होगा)? आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त किसी ने इस प्रकार से जाना नहीं। किसी ने इस प्रकार से कहा भी नहीं। जाने तब कहे न? कहाँ जाना है उसने? समझ में आया? कहो समझ में आया इसमें? श्वेताम्बर में भी यह बात आयी नहीं है। आहाहा! अनादि सनातन जैनदर्शन, दिगम्बर दर्शन के अन्दर यह बात है। कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न यह, सब कल्पित सब। उत्तराध्ययन भी कल्पित बनाया हुआ है। भगवान की वाणी तो यह दिगम्बर सन्तों ने रखी, वह वाणी है। मार्ग तो यह है, बापू! किसी को बुरा लगाने के लिये कुछ नहीं है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? उत्तराध्ययन में अन्त में आता है न? ऐसा कहते हैं कि भगवान की देशना... एकदम खोटी बात है। उसमें तो वस्त्र रखना, ऐसा करना, वैसा करना— ऐसा उत्तराध्ययन में है। खोटी बात है। सब कल्पना है।

जिनेश्वरदेव ने तो ऐसा आत्मा कहा और उसका आश्रय करके जिसे सम्यग्दर्शन होता है, वह दूसरे को नहीं मानता और उसका आश्रय करके जिसे चारित्र होता है, उसकी दशा बाह्य में नग्न हो जाती है और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प व्यवहार से होता है, उसे हेयरूप जानता है। आहाहा! गजब बातें! समझ में आया? उत्तराध्ययन में तो बहुत सब फेरफार। कैसी स्वामी की चर्चा आती है न! तेईसवें अध्ययन में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी-झूठी। अन्तिम देशना कहाँ थी? ध्यान में है। वाणी बन्द

हो गयी। बहुत सब फेरफार है। अभी तो किसी के साथ में विवाद निकालने जैसा नहीं है। वस्तुस्वरूप यह है। ऐसी बात है।

एक व्याख्या तो देखो यह! परमस्वभाववाला यह तत्त्व उन चार स्वभाववाला परमभाव है। आहाहा! त्रिकाल अनन्त चतुष्टय जिसमें पड़ा है। तू ध्रुव अविनाशीरूप से। जिसे अनन्त चतुष्टय प्रगट करना हो, उसे इस अनन्त चतुष्टय का आश्रय लेना चाहिए। दूसरी कोई क्रिया उसकी है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऊपर कहा न? उसका आश्रय करने से। कहते हैं, रागादि बीच में आते हैं, उनका आश्रय नहीं, वह कोई वस्तु का कारण नहीं है। व्यवहार होता अवश्य है बीच में, परन्तु वह कोई कारण नहीं है। वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? देव-शास्त्र-गुरु, भक्ति-पूजा का विकल्प होता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। व्यवहार पराश्रित, वह बन्ध का कारण है। स्वाश्रित, वह मुक्ति का कारण है। ऐसा मार्ग त्रिकाल है। मानना, न मानना, वह जगत के स्वाधीन है।

श्लोक-२९६

[अब, इस १७७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—]

(मालिनी)

अविचलित-मखण्ड-ज्ञानमद्वन्द्वनिष्ठं,
निखिल-दुरित-दुर्गव्रातदावाग्निरूपम्।
भज भजसि निजोत्थं दिव्यशर्मामृतं त्वं,
सकल-विमलबोधस्ते भवत्येव तस्मात्।।२९६।।

(वीरछन्द)

अविचल और अखण्डज्ञानमय जो अद्वन्द्व में निश्चल लीन।
दुस्तर सकल पाप-वन दहने को दावानल तुल्य प्रवीण॥
निज से ही उत्पन्न सुखामृत दिव्य जिसे तू भजे सुजान।
भजो उसी को जिससे सकल विमल हो तुझको केवलज्ञान॥२९६॥

[श्लोकार्थः—] अविचल, अखण्डज्ञानरूप, अद्वन्द्वनिष्ठ (राग-द्वेषादि द्वन्द्व में जो स्थित नहीं है) और समस्त पाप के दुस्तर समूह को जलाने में दावानल समान—स्वोत्पन्न (अपने से उत्पन्न होनेवाले) दिव्यसुखामृत को (-दिव्यसुखामृतस्वभावी आत्मतत्त्व को)—कि जिसे तू भज रहा है उसे—भज; उससे तुझे सकल-विमल ज्ञान (केवलज्ञान) होगा ही।२९६।

श्लोक - २९६ पर प्रवचन

(कलश) २९६

अविचलित-मखण्ड-ज्ञानमद्वन्द्वनिष्ठं,
निखिल-दुरित-दुर्गव्रातदावाग्निरूपम्।
भज भजसि निजोत्थं दिव्यशर्मामृतं त्वं,
सकल-विमलबोधस्ते भवत्येव तस्मात्।।२९६।।

श्लोकार्थः अविचल, अखण्डज्ञानरूप,... कैसा है भगवान आत्मा ? चलित नहीं, ऐसा अखण्ड ज्ञानरूप है। अखण्ड ज्ञानरूप एकरूप है। त्रिकाल... त्रिकाल अद्वन्द्व अर्थात् द्वन्द्वरहित **अद्वन्द्वनिष्ठ (राग-द्वेषादि द्वन्द्व में जो स्थित नहीं है) और समस्त पाप के दुस्तर समूह को जलाने में...** समस्त पुण्य-पाप के दुस्तर समूह को। जिस पर **दावानल समान—स्वोत्पन्न (अपने से उत्पन्न होनेवाले) दिव्यसुखामृत को...** दिव्य आनन्द के अमृत को ऐसे **दिव्यसुखामृत को (-दिव्यसुखामृतस्वभावी आत्मतत्त्व को)...** आहाहा! देखो! स्वयं। **कि जिसे तू भज रहा है उसे—भज;...** भगवान पूर्णानन्दस्वभाव, उसे तू एकाग्र होकर भज रहा है, उसे भज। भगवान का भजन-बजन वह सब विकल्प है। कहो, समझ में आया ? आहाहा! लो! यह भज कहते हैं। भज रहा है, उसे भज।

पूर्णानन्द का नाथ सहजानन्दमूर्ति प्रभु, उसे तू भज रहा है। उसका तेरा झुकाव वहाँ ही है। उसे भज। आहाहा! व्यवहार और निमित्त को न भज। कहो, समझ में आया ? ऐसा मार्ग पहले से गजब कहा है यह तो। मार्ग ही ऐसा है, भगवान! तू बड़ा है और तेरा मार्ग भी इतना ही बड़ा है। आहाहा! स्वयं मुनिराज दिगम्बर सन्त हैं। वनवासी पद्मप्रभमलधारिदेव

आहाहा! अब उन्हें वे मिथ्या सिद्ध करते हैं, हों! ऐसे दृष्टान्त निश्चय से दिये और कहते हैं भज रहा है उसे। यह तो बीच में वह विकल्प आता है, वह हो जाता है। मेरा भजन तो आत्मा आनन्दस्वरूप का भजन है। आहाहा!

दिव्यसुखामृत... से भरपूर। दिव्य अर्थात् आनन्द के अमृत से भरपूर भगवान पूर्ण स्वरूप, ऐसे आनन्द को भजता है, अनुभव करता है। उसे ही अनुभव कर, बस! बाकी कोई अनुभव करने योग्य नहीं है। आहाहा! स्वयं को विश्वास हो गया है कि मैं ऐसे आत्मा को ही भजता हूँ। पूर्णानन्द स्वभाव से भरपूर भगवान में ही मेरी एकाग्रता और स्वसन्मुखता है। बस, ऐसी की ऐसी रख। उसका भजन कर। भजता है, उसका भजन कर। भजता है, उसका भजन कर। आहाहा! दूसरी सब बातें छोड़ दे। व्यवहार के विकल्प हों तो इसका भजन करने पर वह सब छूट जाता है। समझ में आया?

यहाँ तो पर्याय का भजन कर - ऐसा नहीं कहा। ऐसे त्रिकाली को भज। वह भजन पर्याय है परन्तु त्रिकाली को भज। ऐई! जिसे भज रहा है अर्थात् पर्याय हुई। त्रिकाली भगवान आनन्द का धाम, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, जिसके आनन्द के एक समय में स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़ा हुआ तिनका, कचरा जैसा लगता है। सड़ी हुई बिल्ली और कुत्ते का कलेवर हो, ऐसा उसे (लगता है)। आहाहा!

दिव्य सुखामृत। भगवान! आनन्द का, अमृत का समुद्र प्रभु स्वभाव का सागर है। स्वभाव है, उसे किसी क्षेत्र की महानता की आवश्यकता नहीं है। उसका स्वभाव बेहद अपरिणमित है। उसे तू भजता है। आहाहा! जिसका अनुभव तू करता है, उसका तू अनुभव कर। आहाहा! लो! यह आत्मा त्रिकाली ऐसा है, उसे भजना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? इसमें वाद-विवाद को स्थान ही कहाँ है? वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। आहाहा! ऐसे महान भगवान का विश्वास, उस विश्वास की कीमत कितनी! आहाहा! विश्वास अर्थात् सम्यग्दर्शन। ऐसा परमात्मा परमस्वभावभाव का अकेला पिण्ड प्रभु, पूर्ण सागर, उसकी श्रद्धा। उसकी श्रद्धा में कीमत कितनी उस श्रद्धा की - समकित की! आहाहा! जिसने ऐसे आत्मा को अन्दर में स्वीकार किया और अनुभव में (लिया उसकी कीमत कितनी)। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)